RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2022-24
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जून–2023 | वर्ष – 15 | अंक : 05 | मूल्य : 5/-

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल)
मो.: 8299162841
हमीरपुर ब्यूरो प्रमुख –
रघुवर प्रसाद, मो.: 9793739030
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख लखनऊ मण्डल :
राजकुमार, उन्नाव
मो.: 9889273743, 9392660070
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.–रामटौरिया, जिला–छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : ब्यूरो प्रमुख
रमा गजभिये, मो.: 7828273934
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001,
मो. : 09887512360, 0144–3201516
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें –
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा–पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.–33496621020 • IFSC CODE-SBIN0001784

गणेश जी कपोल कल्पनाओं के शिकार

आजकल जहां भी देखिए किसी व्यापार में, घरबार में तीजत्योहार में यानी हर जगह पर व्यवहार में हिंदुओं में सब से पहले गणेशजी का स्मरण किया जाता है। सर्वत्र ही दुकानों की साफ दीवारों पर हाथ की गंदी लिखाई में 'श्री गणेशाय नमः' लिखा मिलेगा।

अब आइए, यह पता लगाएं कि गणेशजी हैं क्या? किसी हिंदू से पूछिए कि गणेशजी के पिता का क्या नाम है तो उत्तर मिलेगा, ''शंकरजी''। अब अगर आप यह पूछेंगे कि इन का यह विचित्र रूप क्या जन्म से प्राकृतिक है, तो उत्तर मिलेगा, ''नहीं, यह तो स्वयं इनके पिता शंकरजी का कारनामा है।''

किंवदंती इस प्रकार हैः यह शंकरजी की संतान थे। पर शंकरजी ने उन्हें कभी देखा नहीं था। एक दिन की बात है पार्वतीजी अपने घर के आंगन में शायद निर्वस्त्र हो स्नान कर रही थीं। उन्होंने अपने तथाकथित पुत्र यानी गणेशजी को द्वारपाल की हैसियत से द्वार पर बैठा दिया और उन्हें यह आदेश दिया कि कोई अजनबी तब तक अंदर प्रवेश न करे जब तक कि वह स्नान न कर लें।

कहते हैं कि इसी अवसर पर शंकरजी द्वार पर आ गए और उन्होंने अंदर प्रवेश करना चाहा। लेकिन, माता की आज्ञा के विरूद्ध बालक कैसे जाने देता? बालक ने शंकरजी को रोका और उन से कहा, ''माता की आज्ञा है, इसलिए मैं आप को अंदर नहीं जाने दूंगा।''

शंकरजी को क्रोध आ गया, उनके ही घर में उन्हें जाने से रोकने वाला यह दुष्ट कौन हैं? बस, बिना कुछ सोचे समझे उन्होंने बालक पर प्रहार किया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

अंदर पहुंचने पर शंकरजी से पार्वतीजी ने पूछा, ''आप अंदर किस प्रकार आए? बाहर तो पुत्र रखवाली पर बैठा था।''

अब शंकरजी कुछ चौंके, उन्हें इस बात का दुख हुआ कि उनके ही हाथों उनके पुत्र का वध हो गया। वह फौरन अपने निवास स्थान से बाहर आए तथा एक हाथी के बच्चे का सिर काट लाए, फिर उस कटे हुए हाथी के बच्चे के सिर को उन्होंने अपने पुत्र की गरदन से मिला कर जोड़ दिया। और गणेशजी के मृत शरीर में प्राण फूंक दिए। इस प्रकार गणेशजी पुनः जीवित हो गए।

आज के वैज्ञानिक युग में यदि उपर्युक्त गढ़ी हुई कथा, किसी बुद्धिमान मनुष्य के सामने सुनाई जाए तो निश्चय ही वह आप की हंसी उड़ाएगा और अपनी बुद्धि से जोजो प्रश्न करेगा उसका उपयुक्त उत्तर देने में आप अपने आप को बिलकुल असमर्थ पाएंगे।

जरा ध्यान दीजिए, मैं इस तथ्य को तर्कों द्वारा स्पष्ट करता हूं। इसमें आप सत्यता पाएंगे और आप को यह प्रमाण मिलेगा कि वास्तव में यह कथा कोरी कथा है, पंडितों की मनगढ़ंत है। इसके द्वारा वे हम लोगों को झूठे विश्वास में डाल कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।

आप गौर से सोचिए कि जब पार्वती जी ने गणेशजी को उक्त आदेश देकर बाहर बैठा दिया था, तब शंकरजी ने– गणेशजी के यह कहने पर भी कि माता की आज्ञा है, कोई अंदर नहीं जा सकता–अंदर जाने का हठ किया जो युक्तिसंगत नहीं था। फिर जब शंकरजी त्रिकालदर्शी थे तो इतनी छोटी सी बात समझना कि गणेशजी उनके अपने ही पुत्र हैं, उनके लिए मामूली बात थी। इस पर भी अपने पुत्र का अपने हाथों वध करना मूर्खता के सिवा और क्या था।

मान लीजिए, क्रोधांध होकर उन्होंने अपने पुत्र का वध कर भी दिया तो फिर पार्वती के कहने पर वह उसे पुनः जीवित करने के लिए किसी दूसरे जंतु का सिर ढूंढ़ने के लिए क्यों निकले, जबकि वहीं पर उनके पुत्र का ही सिर पड़ा हुआ होना चाहिए था। शायद पंडितों ने उस सिर को कहीं उड़ा दिया होगा नहीं तो वे जनता को मूर्ख कैसे बनाते।

कितनी हास्यास्पद व मूर्खातापूर्ण बात लगती है कि गणेशजी का सिर न जोड़ कर शंकरजी ने एक निरीह वन्य प्राणी का वध करके और उसका सिर जोड़ कर अपने पुत्र को जीवनदान दिया।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस समय शंकरजी अपनु पुत्र को जीवित करने के लिए किसी प्राणी का सिर लेने के लिए चले तो मार्ग में उन्हें कुत्ते, बिल्लियां, खरगोश तथा दूसरे वन्य जंतु भी मिले होंगे। लेकिन उन्होंने केवल हाथी के बच्चे का ही वध क्यों किया? इसका उत्तर तो मेरे पास भी नहीं है। हां कोई पोंगा पंडित ही इसका सही उत्तर दे सकता है।

इसका उत्तर तो मेरे पास भी नहीं है। हां कोई पोंगा पंडित ही इसका सही उत्तर दे सकता है।

अब एक प्रश्न फिर जोरशोर के साथ उठ खड़ा होता है। जीवविज्ञान के विद्यार्थी जानते होंगे कि मनुष्य की ग्रीवा तथा हाथी की ग्रीवा में कितना अंतर होता है तथा मनुष्य के मुख व हाथी की बनावट में कोई तुलना ही नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है कि हाथी की ग्रीवा ठीक रूप से न लग पाने पर शंकरजी ने अवश्य प्लास्टिक सर्जरी की होगी, जिस का विवरण शायद पंडित लोग अपने पुराणों में देना भूल गए, नहीं तो इस संबंध में कुछ न कुछ हांकते।

यदि शंकरजी के पास स्वयं अपनी ही अपार शक्ति थी तो क्यों नहीं उन्होंने गणेश जी को तत्काल मंत्रों के बल पर जीवित कर लिया और उन्हें इतना कुरूप क्यों बनाया?

जब किसी का सिर काट कर जोड़ना ही था तो क्यों नहीं किसी सुंदर बालक की हत्या की गई?

यदि ये प्रश्न करने पर आप को सही उत्तर नहीं मिलता है तो या तो आप को अपना दिमाग खराब महसूस होगा या आप पंडितों को पूर्णतः पागल, कोरा गप्पी समझने लगेंगे।

जब तक हम कोरी कहानियों में पड़े रहेंगे, उन पर विश्वास करेंगे तब तक हमारा सुधार संभव नहीं। आज विज्ञान का युग है। हर मनुष्य अपनी समस्याओं का क्या, क्यों और कैसे का समाधान करता है। बेहतर हो, आप भी अपने पास पड़ोस की वस्तुओं पर ध्यान दीजिए, उन्हें गौर से देखिए, सोचिए और तर्क कीजिए कि क्या वे वास्तव में उतनी ही सत्य हैं जितनी दिखाई देती हैं। यदि आप में क्षमता है तो अपनी विचारशक्ति को उचित मार्ग में लगाकर अपना तथा जनसमाज का कल्याण करें।

साभार : कितने खरे हमारे आदर्श?
पृ.सं. 277 से 279 तक। सं. राकेश नाथ

सांप्रदायिक गतिरोध और उसके समाधान के उपाय

अध्यक्ष महोदय,

मैं वास्तव में आपका अत्यंत आभारी हूं कि आपने मुझे अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ के वार्षिक अधिवेशन को संबोधित करने के लिए आमंत्रित करने की कृपा की। मुझे अनुसूचित जातियों के इस विशाल जनसमूह को यहां देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह देखते हुए कि इस परिसंघ की स्थापना को अभी कुछ ही समय हुआ है, परिसंघ का यह विकास हर दृष्टि से अद्भुत है। भारत–भर की अनुसूचित जातियां इस संघ में सम्मिलित हुई हैं और यह बात निर्विवाद है कि लोगों का यह पक्का इरादा है कि वे इस संघ को ही अपना प्रतिनिधि संगठन बनाएंगे। इस संघ का इतने कम समय में जो विस्तार हुआ है, उसका तब तक अनुमान नहीं किया जा सकता, जब तक कि हमारे संगठन के मार्ग में आने वाली जबरदस्त कठिनाइयों को भली प्रकार न समझ लिया जाए। अन्य राजनीतिक संगठनों के कुछ ऐसे एजेंट है, जो हमारे लोगों को झूठे प्रलोभन देकर, उनसे झठे वायदे करके और झूठे प्रचार से उन्हें फुसलाते रहते हैं। यह हमारे अपने ही लोगों की अज्ञानता है, जो उस संकट–काल को नहीं जानते, जिसमें हम रह रहे हैं और वे यह भी नहीं जानते कि हमारे राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन का कितना महत्व है। हमारे पास जो साधन है, वे बहुत ही कम है। हमारे पास धन नहीं है। हमारा अपना कोई समाचार–पत्र नहीं है। हमारे लोगों पर भारत–भर में आए दिन जो निर्मम अत्याचार होते हैं, उनका जिस प्रकार दमन किया जाता है, उसकी सूचना समाचार–पत्रों में नहीं छपती। यहां तक कि समाचार–पत्र हमारे सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों से संबंधित विचारों को जान–बूझकर जनता के सामने नहीं आने देते और यह सब समाचार–पत्रों की सुसंगठित साजिश का नतीजा है। हमारे पास धन नहीं है कि हम कोई ऐसी व्यवस्था कायम कर सकें, जिससे अपने लोगों की सहायता की जाए और उन्हें शिक्षित किया जाए, आंदोलित किया जाए तथा उन्हें संगठित किया जा सके।

यही वे कठिनाइयां हैं, जिनसे हमें निपटना है। इन कठिनाइयों के बावजूद हमारे परिसंघ का इतना विस्तार होना हमारे ही उन लोगों के प्रयासों का परिणाम है, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम और निस्वार्थ भावना के साथ समर्पित होकर अपने को इस संगठन के निर्माण में लगाया है। मुझे विश्वास है कि आप यह चाहेंगे कि मैं बंबई नगर अनुसूचित जाति परिसंघ के अध्यक्ष श्री गणपति महादेव जाधव के कार्य की प्रशंसा में दो शब्द कहूं। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उनमें अद्भुत संगठनात्मक क्षमता है। मुझे विश्वास है कि इस अधिवेशन की सफलता अधिकांशतः उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है और इस सफलता का श्रेय उन लोगों को भी जाता है, जो उनके सहयोगी रहे हैं।

साधारणः ऐसी जनसभा में मुझे अनुसूचित जातियों की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं में से किसी पर भाषण देना चाहिए था और हमारे लोग भी यही चाहेंगे कि मैं किसी ऐसी ही समस्या पर बोलूं। परंतु मेरा ऐसे सांप्रदायिक विषय पर भाषण देने का कोई इरादा नहीं है। मैं तो ऐसे विषय पर भाषण देना चाहूंगा, जो सामान्य है और जिसमें लोगों की व्यापक रूचि हो, जैसे कि भारत के भावी संविधान का आकार और स्वरूप।

मेरे लिए यह बता देना भी अनुचित न होगा कि मेरे इस निर्णय के क्या कारण हैं। फिलहाल अनुसूचित जातियों के आंदोलन का नेतृत्व करने तथा दिन–प्रतिदिन की इसकी समस्याओं का सामना करने का दायित्व मेरे कंधों पर नहीं है। मैं अपने कार्यभार के कारण इस कार्य से बाहर हूं, न ही इस भार को स्वीकार करने की मेरी कोई इच्छा है। यही एक ऐसा कारण है जिससे मैं इस सांप्रदायिक विषय पर नहीं बोलना चाहता, जो केवल अनुसूचित जातियों से ही संबंधित है।

अनुसूचित जातियों पर प्रायः यह दोषारोपण किया जाता है कि वे स्वार्थी हैं और उनकी अपने में ही रूचि होती है तथा उनके पास देश की राजनीतिक समस्या के समाधान के लिए भी कोई रचनात्मक सुझाव नहीं है। यह आरोप झूठा है और यदि यह सच भी है तो अस्पृश्य ही ऐसे नहीं है जो इसके दोषी पाए जाएं। भारत के अधिसंख्य लोगों का यही हाल है कि वे रचनात्मक सुझाव नहीं देते। इसका कारण यह नहीं कि उन लोगों में रचनात्मक सुझाव देने की क्षमता नहीं है। सभी रचनात्मक विचार क्यों प्रकट नहीं हो पाते, इसका कारण यह है कि एक दीर्घकालीन और अनवरत प्रचार ने आम लोगों के मन में यह बात बैठा दी है कि कोई भी बात तक तक आदर–भाव से नहीं देखी जानी चाहिए और स्वीकार नहीं की जानी चाहिए, जब तक कि वह बात कांग्रेस ने न उठाई हो। यही वह भावना है, जिसने इस देश में रचनात्मक विचार के स्त्रोतों को नष्ट कर दिया है। साथ ही, मेरा विचार है कि अनुसूचित जातियों के विरूद्ध लगाए गए इस आरोप का सकारात्मक ढंग से प्रतिवाद किया जाना चाहिए और यह दिखा देना चाहिए कि अनुसूचित जातियां देश की सामान्य राजनीतिक उन्नति के लिए रचनात्मक सुझाव देने में सक्षम हैं, जिन्हें यदि यह देश चाहे तो उन पर विचार कर सकता है। यह दूसरा कारण है जिसने मुझे इस अवसर पर सामान्य रूचि के विषय का चयन करने के लिए प्रेरित किया है।

2

संविधान के निर्माण के लिए उत्तरदायित्व

इससे पूर्व कि मैं संवैधानिक प्रस्तावों को जो मेरे मस्तिष्क में हैं, ठोस रूप में प्रस्तुत करूं, मैं दो प्रारंभिक विषय उठाना चाहता हूं। पहला विषय हैः भारत का संविधान कौन तैयार करें? इस प्रश्न का उठाया जाना इसलिए आवश्यक है कि भारत में ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्होंने यद्यपि यह मांग तो नहीं की है, परंतु उन्हें यह आशा जरूर है कि ब्रिटिश सरकार इस गतिरोध को समाप्त करके भारत के संविधान का निर्माण करेगी। मैं सोचता हूं कि यह विचार सर्वथा भ्रामक है, जिसका भंडाफोड़ करना आवश्यक है। ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाया गया और भारतीयों पर थोपा गया संविधान अतीत के लिए ही पर्याप्त था। परंतु यदि उस भावी संविधान की प्रकृति को समझा जाए जिसकी मांग भारतीय कर रहे हैं और उस संविधान को ध्यान में रखा जाए तो यह स्पष्ट है कि आरोपित संविधान से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी।

भारत के पूर्वकालिक संविधानों तथा भावी संविधान में मौलिक अंतर है, और यदि लोग अब भी भारत का संविधान तैयार करने के लिए अंग्रेजों पर विश्वास करते हैं, तो यह लगता है कि उन लोगों ने इस अंतर को अभी तक महसूस नहीं किया है। यह अंतर इस बात से स्पष्ट है कि पूर्वकालिक संविधानों में शासन–भंग खंड शामिल किया गया था। परंतु भारत के भावी संविधान में इस प्रकार शासन–भंग खंड शामिल नहीं किया जा सकता। भारत के लोग शासन–भंग खंड की निंदा करते हैं, जो कि अभी तक भारत सरकार अधिनियम, 1935 की कुख्यात धारा 93 रही है। वे यह नहीं जानते कि इस अधिनियम में क्यों और कैसे इस धारा को स्थान दिया गया। यदि किसी समुदाय के राजनीतिक जीवन को प्रशासित करने वाले दो महत्वपूर्ण विचार ध्यान में रखे जाएं, तो इसका महत्व स्पष्ट हो जाएगा। इनमें से प्रथम विचार यह है कि कानून और व्यवस्था राष्ट्र के लिए एक प्रकार की औषधि है और जब राष्ट्र में विकार उत्पन्न हो जाए तो इस औषधि का प्रयोग किया जाना चाहिए। वास्वत में, यह विचार इतना महत्वपूर्ण है कि यदि इस औषधि का सेवन न कराया जाए तो इसे समाज और सभ्यता के विरूद्ध अपराध समझा जाना चाहिए। दूसरा विचार यह है कि यद्यपि यह सत्य है कि शासन करने के लिए कोई न कोई सरकार होनी चाहिए––जिससे मेरा तात्पर्य कानून और व्यवस्था स्थापित करने से है– जब तक कि कोई बेहतर सरकार उसका स्थान न ग्रहण करे। शासन–भंग करने वाले खंड से इन दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है। इस प्रकार लोगों के अमन–चैन के लिए इसका भारी महत्व है। यही एकमात्र उपाय है, जिससे देश को अराजकता से बचाया जा सकता है, क्योंकि जब संवैधानिक सरकार असफल हो जाती है, तब शासन–भंग करने वाले खंड में कम से कम सरकार को बनाए रखने की क्षमता तो होती है।

गत वर्षों में संवैधानिक सरकार और ऐसी सरकार में भेद व्यवहार्य समझा जाता था, जिसके लिए यह प्रावधान किया गया था कि यदि संवैधानिक सरकार असफल हो जाए तो उसके स्थान पर वह सरकार स्थान ग्रहण कर सकती है। यह व्यवहार्य था, क्योंकि एक ओर ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को संवैधानिक सरकार बनाने का अधिकार दिया था, तो दूसरी ओर उसने संवैधानिक सरकार असफल हो जाने की स्थिति में शासन करने का अधिकार दिया था, तो दूसरी ओर उसने संवैधानिक सरकार असफल हो जाने की स्थिति में शासन करने का अधिकार अपने ही हाथ में रखा था। भारत के भावी संविधान में इस भेद को बनाए रखना संभव नहीं होगा। ब्रिटिश सरकार के लिए भी यह संभव नहीं होगा कि भारतीयों को संवैधानिक सरकार बनाने का अधिकार दिया जाए और उस स्थिति में शासन करने का अधिकार वह अपने ही हाथ में रखे, जबकि संवैधानिक सरकार भंग हो जाए। इसका कारण स्पष्ट है। भारत के गत संविधानों में भारत को औपनिवेशिक राज्य नहीं समझा गया था। भावी संविधान इस परिकल्पना पर बनाया जाएगा कि भारत एक औपनिवेशिक राज्य होगा। संवैधानिक सरकार के असफल हो जाने पर शासन–भंग खंड अथवा सरकार के हस्तक्षेप की संभावना का समाधान उस देश में किया जा सकता है, जो कि औपनिवेशिक राज्य की स्थिति में न हो। लेकिन औपनिवेशिक राज्य होने पर इन दोनों में समाधान नहीं किया जा सकता। औपनिवेशिक राज्य अथवा किसी स्वतंत्र देश के मामले में या तो संवैधानिक सरकार होती है अथवा विद्रोह होता है।

इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि शासन–भंग होने की संभावना होने पर भारतीय औपनिवेशिक राज्य के लिए संविधान तैयार किया जाना चाहिए कि सभी न केवल उसका पालन करें, बल्कि उसका सम्मान भी करें और सभी अथवा यदि सभी न हों तो कम से कम भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी महत्वपूर्ण तत्व इसको बनाए रखने के लिए तैयार रहें और इसका समर्थन करें। यह तभी हो सकता है, जब संविधान भारतीयों द्वारा भारतीयों के लिए तैयार किया जाए और इस कार्य के लिए भारतीयों की स्वैच्छिक अनुमति ली जाए। यदि संविधान ब्रिटिश सरकार द्वारा आरोपित किया जाता है और इसे कोई एक वर्ग स्वीकार करता है और दूसरा वर्ग उसका विरोध करता है, तो देश में एक ऐसा तत्व उभरेगा, जो संविधान के प्रति शत्रुतापूर्ण रूख अपनाएगा और उसकी शक्ति संविधान को लागू करने की बजाए उसे भंग करने में लग जाएगी। संविधान विरोधी दल संविधान को नष्ट करना ही अपना कर्तव्य समझेगा और वह वास्तविक लैटिन अमरीकी शैली में संविधान लागू करने वाले दल के विरूद्ध प्रचार करने में ही व्यस्त रहेगा।

ब्रिटिश शासकों द्वारा भारत के लिए संविधान बनाना निरर्थक है, क्योंकि वे उस संविधान को लागू करने के लिए यहां रहेंगे ही नहीं। एक सशक्त वर्ग द्वारा अथवा ऐसे ही अन्य वर्गों के समूह द्वारा अन्य वर्गों पर संविधान को आरोपित करने का भी यही परिणाम होगा। इसलिए मेरा यह दृढ़ मत है कि यदि भारतीय औपनिवेशिक राज्य का दर्जा चाहते हैं, तो वे अपने संविधान निर्माण के अपने दायित्व से बच नहीं सकते। इस प्रकार यह स्थिति अपरिहार्य है।

3

संविधान सभा

मैं जो दूसरा प्रश्न उठाना चाहता हूं वह यह हैः क्या संविधान सभा होनी चाहिए, जिसे संविधान निर्माण करने का कार्य सौंपा जाए? संविधान सभा का जिक्र प्रत्येक

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

व्यक्ति की जबान पर है। कांग्रेस दलों ने अपने प्रस्तावों में, जो कांग्रेस मंत्रिमंडल के त्या–पत्र देने से पूर्व पारित किए थे, यह मांग की थी कि भारत के संविधान का निर्माण भारतीयों द्वारा बनाई गई संविधान सभा द्वारा किया जाए। क्रिप्स के प्रस्तावों में संविधान सभा के गठन का प्रस्ताव भी सम्मिलित था। सप्रू समिति ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया है।

मैं यह बताना चाहूंगा कि मैं संविधान सभा के प्रस्ताव के पूरी तरह विरूद्ध हूं। यह बहुत ही अनावश्यक है। मैं मानता हूं कि यह एक ऐसी खतरनाक योजना है, जो इस देश को गृह–युद्ध में झोंक सकती है। पहले तो मेरी समझ में यही नहीं आता कि संविधान सभा की क्यों आवश्यकता है। भारतीयों की वैसी स्थिति नहीं है, जैसी कि अमरीकी से संविधान–निर्माताओं की उस समय थी, जब उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान बनाया था। उन्हें ऐसे विचार प्रस्तुत करने थे, जो स्वतंत्र लोगों के संविधान के लिए उपयुक्त थे। उनके सामने संविधान के ऐसे नमूने नहीं थे, जिनका संदर्भ–सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सके। लेकिन भारतीयों के संबंध में ऐसी स्थिति नहीं हो सकती। संवैधानिक विचार और संवैधानिक प्रारूप सुलभ है। उपलब्ध नहीं हैं, जिनमें से चयन किया जाए। तीसरे, शायद की कोई बड़ा और केवल संवैधानिक प्रश्न हो, जिसके बारे में यह कहा जा सके कि भारतीयों में अधिक विवाद है। इस प्रश्न पर सहमति है कि भावी भारतीय संविधान संघीय होना चाहिए। यह भी लगभग तय हो चुका है कि कौन–कौन से विषय केन्द्र सरकार के पास रहेंगे और कौन–कौन से विषय प्रांतों को सौंपे जाएंगे। राजस्व के विभाजन के बारे में केन्द्र और प्रांतों के बीच कोई विवाद नहीं है और मताधिकार के बारे में भी कोई विवाद नहीं है। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका का विधायिका और कार्यपालिका के साथ क्या संबंध होगा, इस पर भी कोई विवाद नहीं है। विवाद का जो मुद्दा अनिर्णित है, वह अवशिष्ट शक्तियों के प्रश्न से संबद्ध है क्या ये शक्तियां केन्द्र के हाथ में रहें अथवा प्रांतों को दे दी जाए। परंतु यह मामला मामूली है। वास्तव में, वर्तमान भारत सरकार अधिनियम में दी गई व्यवस्था को श्रेष्ठ समझौते के रूप में अपनाया जा सकता था।

इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं यह नहीं समझ पा रहा कि संविधान के निमार्ण के लिए संविधान सभा क्यों आवश्यक हैं। भारत सरकार अधिनियम, 1935 में भारत का संविधान पहले ही बहुत कुछ लिखा जा चुका है। ऐसा लगता है कि संविधान सभा गठित करना केवल उसी कार्य की पुनरावृत्ति जान पड़ती है, जो एक बार फिर किया जाना है। अब केवल यह करना आवश्यक है कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 की उन सभी धाराओं को निकाल दिया जाए, जिनमें औपनिवेशिक राज्य के दर्जे का विरोध किया गया है।

संविधान सभा के लिए केवल एक ही कार्य शेष है कि सांप्रदायिक समस्या का किस प्रकार समाधान किया जाए। मेरा दृढ़ विचार है कि संविधान सभा के विचारार्थ विषय कुछ भी क्यों न हों, सांप्रदायिक प्रश्न को उनमें सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। सप्रू समिति ने जो सुझाव दिए हैं, उनके अनुसार संविधान सभा के गठन पर विचार करना चाहिए। कुल सदस्यों की संख्या 160 निर्धारित की गई है। प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अंतर्गत चुनाव होगा और उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के तीन चौथाई बहुमत से निर्णय लिया जाएगा। क्या अल्पसंख्यक वर्ग इस संविधान सभा को सुरक्षित संस्था मान सकते हैं, जिसकी निष्पक्षता के प्रति वे पूर्ण रूप से आश्वत हो सकें? इस प्रश्न का उत्तर दो अन्य प्रश्नों के उत्तर पर निर्भर करता है क्या इससे यह गारंटी मिल सकेगी कि संविधान सभा में निर्वाचित अल्पसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधि इसके सच्चे प्रतिनिध होंगे? दूसरे, क्या इससे यह गारंटी मिल सकती है कि किसी विशेष अल्पसंख्यक वर्ग के दावों के संबंध में संविधान सभा का निर्णय वास्तव में किसी अल्पसंख्यक वर्ग पर आरोपित नहीं किया जाएगा? इस प्रश्नों में से किसी भी प्रश्न पर मैं विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि अल्पसंख्यक वर्ग को डरने की आवश्यकता नहीं है।

इन प्रश्नों को उठाने से पूर्व मैं यह बताना चाहूंगा कि संविधान सभा के बारे में क्रिप्स समिति और सप्रू समिति की योजना में क्या अंतर है:

(1) सप्रू समिति ने संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या 160 निर्धारित की है। सर स्टेफोर्ड क्रिप्स ने कोई भी संख्या निर्धारित नहीं की। परंतु उनके प्रस्ताव में यह व्यवस्था की गई है कि संविधान सभा में प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों की कुल संख्या का 10 प्रतिशत भाग होगा, अर्थात यह संख्या निर्धारित कर दी गई है जो लगभग 158 होती है। इसमें केवल दो सदस्यों का अंतर है।

(2) सप्रू समिति द्वारा संविधान सभा के चुनाव का जो तरीका बताया गया है, वह आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अंतर्गत संयुक्त चुनाव–पद्धति से हुआ चुनाव है। इस तरीके में संविधान सभा के गठन के लिए क्रिप्स योजना तथा सप्रू योजना में कोई अंतर नहीं है।

(3) क्रिप्स योजना के अंतर्गत संप्रदाय आधारित आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार सप्रू योजना क्रिप्स योजना से भिन्न है, क्योंकि इसके अनुसार निर्धारित अनुपात में विशेष समुदायों के लिए स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था है। यह अंतर केवल साधारण–सा है। यद्यपि क्रिप्स योजना में संख्या का निर्धारण नहीं किया गया, तथापि आनुपातिक प्रतिनिधित्व की योजना का वास्तव में यही परिणाम होता कि इस प्रकार का आरक्षण हो। इन दोनों योजनाओं के अंतर्गत प्रतिनिधित्व के कोटा का अंतर आगे दी गई तालिका में दिखाया गया है।

समुदाय और उनके हित	संविधान सभा की सीटों का कोटा	
	क्रिप्स योजना के अंतर्गत	सप्रू योजना के अंतर्गत
हिन्दू	77	51
मुसलमान	50	51
अनुसूचित जातियां	15	20
सिख	3	8
भारतीय ईसाई	2	7
आंग्ल भारतीय	1	2
यूरोपीय	6	1
आदिवासी जनजातियां	2	3
विशेष हित	–	16
अन्य	2	1
	158	160

सप्रू समिति ने संविधान सभा के गठन में प्रत्येक समुदाय के सदस्यों की संख्या ही निर्धारित नहीं की, बल्कि इस समिति ने मुसलमानों को हिन्दुओं के बराबर स्थान देने का प्रस्ताव किया। इस विचलन के लिए समिति का तर्क यह है कि इस प्रस्ताव के प्रतिफल के रूप में उसने संविधान सभा में चुनाव के लिए आधार के रूप में संयुक्त चुनाव–पद्धति की मांग की है। इस संबंध में यह कहना चाहिए कि समिति ने क्रिप्स के प्रस्तावों को बिल्कुल गलत समझा है। क्रिप्स के प्रस्तावों में संयुक्त चुनाव–पद्धति की पहले ही व्यवस्था कर दी गई थी, क्योंकि उनमें एक खंड इस प्रकार है––'प्रांतीय विधान–मंडलों के अवर सदनों के सदस्यों से एकल निर्वाचक–मंडल गठित होगा।' इसी बात को दूसरे तरीके से इस प्रकार कहा जा सकता है कि चुनाव संयुक्त चुनाव–पद्धति द्वारा किया जाएगा। इससे एक पक्ष को तो बिना किसी शर्त के कुछ दे दिया गया है और ऐसा करके अन्य समुदायों के लिए संकट पैदा कर दिया गया है।

(4) क्रिप्स प्रस्ताव के अंतर्गत सभा का निर्णय उपस्थिति सदस्यों के बहुमत तथा मतदान से किया जाना था। सप्रू प्रस्ताव के अंतर्गत निर्णय उपस्थित सदस्यों में से तीन चौथाई सदस्यों के बहुमत तथा मतदान से किया जाता है।

अब दोनों प्रश्नों पर फिर से विचार कर लिया जाए। प्रथम प्रश्न के संबंध में स्थिति क्या है? इसके बारे में कोई मत प्रकट करने के लिए पहले यह आवश्यक है कि प्रांतीय विधान सभाओं की सदस्यता का संप्रदाय आधारित वितरण जान लिया जाए। पृष्ठ पर दी गई तालिका में उस स्थिति का संक्षिप्त सार दिया गया है।

प्रांतीय विधान सभाओं में समुदायों के आधार पर सीटों का वितरण

समुदाय	सामान्य	महिलाएं	विश्वविद्यालय	मजदूर संघ	वाणिज्य	जमींदार	योग
1	2	3	4	5	6	7	8
1. हिन्दू	651	26	7	33	31	22	770
2. मुसलमान	482	10	1	5	6	13	517
3. अनुसूचित जातियां	151	–	–	–	–	–	151
4. भारतीय ईसाई	20	1	–	–	–	–	21
5. आंग्ल भारतीय	11	1	–	–	–	–	12
6. सिख	34	1	–	–	–	1	36
7. यूरोपीय	26	–	–	–	19	1	46
8. आदिवासी	24	–	–	–	–	–	24
योग	1, 399	39	8	38	56	37	1, 577

क्या संप्रदाय आधारित आरक्षण का सप्रू समिति ने जो प्रस्ताव किया है और जो क्रिप्स प्रस्ताव में नहीं पाया जाता, कोई महत्व है? यह इस बात पर निर्भर करता है कि एक समुदाय किस प्रकार अन्य समुदायों के सदस्यों के चुनाव को प्रभावित कर पाएगा। इस संबंध में क्या संभावनाएं है? मैं एक और तालिका में इसे स्पष्ट करता हूं:

स्थानों (सीटों) की तुलना में मतदाताओं की संख्या

समुदाय	संविधान सभा के लिए मतदाता	संविधान सभा में सीटों का कोटा	कोटा के अनुसार चुनाव के लिए आवश्यक मतों की संख्या	(+) मतदाताओं की संख्या में अधिकता (–) मतदाताओं की आवश्यक संख्या से कमी
1	2	3	4	5
1. हिन्दू	778	51	561	+ 217
2. मुसलमान	561	51	517	+ 44
3. अनुसूचित जातियां	151	20	220	– 69
4. भारतीय ईसाई	21	7	77	– 56
5. सिख	36	8	88	– 52
6. यूरोपीय	46	1	11	+ 35

इस तालिका से ये निष्कर्ष निकलते हैं:

(1) यदि कुल मत 1,577 हों और निर्वाचित किए जाने वाले सदस्यों की कुल संख्या 160 हो, तो आनुपातिक प्रतिनिधि पद्धति के अंतर्गत कोटा मोटे तौर पर 10+1=11 होगा।

(2) यदि 11 को कोटा मान लिया जाए तो हिन्दुओं के 217, मुसलमानों के 44 और यूरोपीयों के 35 मत अतिरिक्त होंगे, जबकि अनुसूचित जातियों को 69, भारतीय ईसाइयों को 56 और सिखों को 52 मतों की कमी होगी।

इसी बात को दूसरे तरीके से इस प्रकार कहा जा सकता है:

(1) हिन्दू अपने 217 अतिरिक्त मतों से ऐसे 20 गैर–हिन्दुओं का चुनाव कर सकते हैं, जो उन्हीं पर आश्रित होंगे। मुसलमान अपने 44 अधिक मतों से चार ऐसे गैर–मुसलमानों का चुनाव कर सकते हैं, जो उन्हीं पर आश्रित होंगे और यूरोपीय अपने 35 अधिक मतों से तीन गैर–यूरोपीयों का चुनाव कर सकते हैं, जो उन्हीं पर आश्रित होंगे।

(2) अनुसूचित जातियां 69 मतों की कमी के साथ अपने ही मतों से केवल 13 सदस्यों का निर्वाचन कर सकेंगी और सात सीटों के लिए उन्हें हिन्दु, मुसलमान अथवा यूरोपीय मतदाताओं पर आश्रित होना होगा। भारतीय ईसाई 56 मतों की कमी के साथ अपने ही मतों से केवल दो सदस्यों का निर्वाचन कर सकेंगे। शेष पांच सीटों के लिए उन्हें हिन्दू, मुसलमान अथवा यूरोपीय मतदाताओं पर आश्रित होना पड़ेगा। इसी प्रकार सिख 52 मतों की कमी के साथ अपने ही मतों से केवल तीन सदस्यों का निर्वाचन कर सकेंगे। शेष पांच सीटों के लिए उन्हें हिन्दू, मुसलमान अथवा यूरोपीय मतदाताओं पर आश्रित होना पड़ेगा।

वस्तुस्थिति यह है। यह स्पष्ट है कि छोटे अल्पसंख्यक समुदायों को जो अतिरिक्त प्रतिनिधित्व दिया गया है, वह केवल बहाना है। उनके प्रतिनिधित्व को इतना आश्रित बना दिया गया है कि किसी भी प्रकार उसे वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कहा जा सकेगा।

अब मैं दूसरा प्रश्न उठाता हूं। क्या सप्रू समिति द्वारा संविधान सभा के लिए स्वीकार किए गए निर्णय का नियम

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

सुरक्षित नियम हैं? क्रिप्स प्रस्ताव ने केवल बहुमत का नियम स्वीकार किया है। यह ऐसा बेतुका सुझाव था, जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति पेश नहीं कर सकता था। मुझे ऐसा कोई भी मामला ज्ञात नहीं हैं, जहां संविधान से संबंधित प्रश्नों का निर्णय साधारण बहुमत द्वारा किए जाने के लिए छोड़ दिया गया हो।

क्रिप्स प्रस्तावों में बहुमत के नियम को अपनाने के लिए यह सफाई दी गई है कि अल्पसंख्यक वर्ग के हितों की सुरक्षा के लिए कुछ और व्यवस्था की जानी है। इस व्यवस्था को, इससे पूर्व कि ससंद अपनी प्रभुसत्ता का परित्याग करके भारत के स्वतंत्रता दे, ब्रिटिश सम्राट और भारतीय संविधान सभा के बीच एक संधि का रूप लेना था। इस संधि के प्रस्ताव का तभी अर्थ होता, जबकि संधि संविधान पर अभिभावी होती। परंतु इस प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जाना असंभव था, क्योंकि क्रिप्स योजना के अंतर्गत भारत के अंतर्गत भारत को अपनी इच्छानुसार औपनिवेशिक राज्य अथवा स्वतंत्र देश होने की स्वतंत्रता दी गई थी। यदि भारत औपनिवेशिक राज्य बन जाता है तो वह स्वतः उस समस्त वैधिक शक्ति को प्राप्त कर लेगा, जिसे अधिनियम घोषित करने का अधिकार होगा कि संधि संविधान पर अभिभावी नहीं होगी। ऐसी स्थिति में यह संधि उस कैलेंडर के समान होती, जिसे अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्य इच्छानुसार अपने घरों की दीवारों पर टांग लेते। यह वही स्थिति है, जो आयरलैंड की संधि की हुई थी। आयरिश संधि आयरलैंड के संविधान पर तब तक अभिभावी रही, जब तक कि आयरलैंड औपनिवेशिक राज्य नहीं बन गया। परंतु ज्यों ही आयरलैंड औपनिवेशिक राज्य बना, संधि की शक्ति स्वतंत्र आयरलैंड के राज्य की संसद ने एक संक्षिप्त तथा साधारण अधिनियम पारित करके समाप्त कर दी और ब्रिटिश संसद कुछ भी न कर पाई, क्योंकि ब्रिटिश संसद को यह मालूम था कि आयरलैंड एक औपनिवेशिक राज्य हैं और इसीलिए वह कुछ नहीं कर सकती। मेरी समझ में यह नहीं आता कि अल्पसंख्यक वर्ग को आश्वस्त करने के लिए इतने प्रतिष्ठित व्यक्ति ने इतना बेतुका प्रावधान किस तरह प्रस्तुत कर दिया।

सप्रू प्रस्तावों में की गई व्यवस्थाएं कुछ बेहतर जान पड़ती हैं। परंतु क्या वास्तव में स्थिति में उनसे कोई सुधार हुआ? मेरा विश्वास है कि उनसे कोई सुधार नहीं हुआ है। 160 के तीन चौथाई बहुमत का अर्थ यह है कि यदि किसी विचार को स्वीकार कराना है, तो 120 सदस्यों के समर्थन की आवश्यकता है। इससे पूर्व कि उसे सुधार के रूप में स्वीकार किया जाए, यह जानना आवश्यक है कि 120 सदस्यों के इस दल को गठित करने की क्या संभावना है। यदि हिन्दू और मुसलमान मिल जाते हैं तो वे 102 सदस्यों का दल बना लेंगे, और इस संख्या को 120 करने के लिए केवल 18 सदस्यों की आवश्यकता होगी। अधिकांश विशेष सीटें तथा कुछ और अन्य सीटें इस गठबन्धन के हाथों में आसानी से आ जाएंगी। यदि ऐसा हो जाता है तो संविधान सभा का निर्णय स्पष्ट रूप से अनुसूचित जातियों, सिखों, भारतीय ईसाइयों, आदि पर थोपा हुआ माना जाएगा। यदि मुसलमानों को अलग कर दिया जाता है तो यह निर्णय संयुक्त निर्णय नहीं होगा, बल्कि गैर-मुसलमानों द्वारा मुसलमानों पर आरोपित किया जाएगा। मुझे खेद है कि सप्रू समिति ने कुछ समुदायों द्वारा दूसरों को हराने अथवा चकमा देने का प्रयोजन से क्रम परिवर्तन और संयोजन की संभावनाओं पर विचार नहीं किया है। यदि सप्रू समिति यह व्यवस्था देती कि तीन चौथाई बहुमत में प्रत्येक वर्ग का कम से कम 50 प्रतिशत भाग शामिल होगा, तो कुछ न कुछ सुरक्षा हो जाती।

संयुक्त राज्य में संविधान तैयार करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए सप्रू समिति को एक उपबंध भी जोड़ना चाहिए था ताकि सभा के बाहर अल्पसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधियों द्वारा सभा के निर्णय के कम से कम सांप्रदायिक भाग की किसी भी दशा में अभिपुष्टि संभव हो जाती। सप्रू समिति ने संविधान सभा के लिए जो योजना बनाई, उसमें इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है। इसके फलस्वरूप संविधान सभा केवल एक मजाक बनकर रह गई है।

संविधान सभा की योजना के विरूद्ध अन्य अनेक तर्क हैं। मैं एक तर्क प्रस्तुत करता हूं और यह स्वीकार करता हूं कि इसी ने मुझे अधिक प्रभावित किया है। जब मैंने स्कॉटलैंड और इंग्लैंड के बीच संघ के इतिहास का अध्ययन किया, मुझे स्कॉटलैंड की संसद को जीतने के लिए भ्रष्ट तरीकों और रिश्वत का इस्तेमाल किए जाने पर बहुत दुख हुआ। संपूर्ण स्कॉटलैंड संसद को खरीद लिया गया। निहित स्वार्थों द्वारा वांछित निर्णयों के लिए भारतीय संविधान सभा में भ्रष्ट तरीकों से सदस्यों को खरीदने की संभावनाएं अधिक वास्तविक लगती हैं। मेरा विश्वास है कि उसके प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि ऐसा होता है तो संविधान सभा न केवल उपहास का विषय बन जाएगी, बल्कि मुझे तो पक्का विश्वास है कि उसके निर्णयों को लागू करने से गृह-युद्ध छिड़ जाएगा। यह मेरा सुविचारित मत है कि संविधान सभा का प्रस्ताव लाभ तो क्या पहुंचाएगा, उससे खतरे और बढ़ जाएंगे और इसलिए उसकी उपेक्षा की जानी चाहिए।

4

नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता

मुझसे यह पूछा जाएगा कि यदि संविधान सभा के पक्ष में मत देना सही दृष्टिकोण नहीं है तो इसका विकल्प क्या है? मैं जानता हूं कि मुझसे यह प्रश्न पूछा जाएगा। परंतु मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि सांप्रदायिक समस्या का समाधान करना कठिन है, तो इसका कारण यह नहीं हैं कि इसका समाधान हो ही नहीं सकता और न ही इसका यह कारण है कि हमने संविधान सभा की मशीनरी को अभी तक इस काम में नहीं लगाया है। इसका समाधान इसलिए नहीं हो सकता है कि उसके प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है, वह बुनियादी रूप से गलत है। वर्तमान दृष्टिकोण में यह दोष है कि यह सिद्धांतों की अपेक्षा व्यवहार को महत्व देता है। वास्तव में कोई सिद्धांत है ही नहीं। तरीकों की ही भरमार है। यदि एक तरीका असफल हो जाता है तो दूसरा तरीका काम में लाया जाता है। एक तरीके से दूसरे तरीके तक जो छलांग लगाई जाती है, उससे सांप्रदायिक समस्या असाध्य बन जाती है। चूंकि कोई सिद्धांत है ही नहीं, अतः कोई ऐसा आश्वासन नहीं दिया जा सकता कि नया तरीका सफल होगा ही।

सांप्रदायिक समस्या के समाधान का प्रयत्न करना या तो किसी कायर की योजना है जो धौंस जमाने वाले के पीछे चलता है, अथवा यह किसी धौंसिए की योजना है जो दुर्बल पर हुक्म चलाता है। जब कभी कोई समुदाय सशक्त हो जाता है तथा कुछ राजनीतिक लाभ मांगता है तो उसे कुछ रियायतें दे दी जाती है, ताकि उसकी सद्भावना प्राप्त हो जाए। उसके दावे की न्यायिक जांच नहीं की जाती, और न ही गुणों के आधार पर कोई निर्णय हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि न तो मांगों की कोई सीमा रहती है और न ही रियायतों की। इसकी शुरुआत अल्पसंख्यक वर्ग के लिए पृथक निर्वाचक-मंडल की मांग से की जाती है। यह मांग मान ली जाती है। इसके बाद किसी समुदाय विशेष के लिए पृथक निर्वाचक-मंडल की मांग की जाती है और उस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि वह समुदाय अल्पसंख्यक वर्ग का है या बहुसंख्यक वर्ग का। यह मांग भी स्वीकार कर ली जाती है। इसके बाद जनसंख्या के आधार पर पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की जाती है। इसे भी मान लिया जाता है। फिर प्रतिनिधित्व में वरीयता का दावा किया जाता है और वह भी स्वीकार कर लिया जाता है तत्पश्चात पृथक निर्वाचन-क्षेत्र के अधिकार को बनाए रखने के साथ अल्पसंख्यक वर्गों के ऊपर संवैधानिक बहुसंख्यक वर्ग की मांग की जाती है। इसकी भी स्वीकृति दे दी जाती है। इसके बाद यह आवाज उठाई जाती है कि बहुसंख्यक वर्ग का अन्य समुदाय पर शासन असहनीय है और इसलिए बहुसंख्यक वर्ग के अन्य अल्पसंख्यक वर्ग पर शासन बनाए रखने के उसके अधिकारों पर विपरीत प्रभाव डाले बिना आघात करने वाले समुदाय का मत समाप्त करके उसे बराबरी पर ले आना चाहिए। इस अनवरत तुष्टीकरण की नीति से बढ़कर बेतुकी बात और क्या हो सकती है? यह एक ऐसी नीति है, जिसमें मांगों की कोई सीमा नहीं होती और जिसका परिणाम भी अनंत तुष्टीकरण होता है।

स्पष्ट कहा जाए तो मैं उस समुदाय को दोष नहीं देना चाहता, जो यह रणनीति अपनाता है। यह समुदाय इस रणनीति को इसलिए अपनाता है कि इससे उसे लाभ पहुंचता है। यह इसका अनुसरण इसलिए करता है कि सीमाएं निर्धारित करने के लिए कोई नियम नहीं है और उसका विचार है कि कानूनी तौर पर अधिक मांग की जा सकती है और उसे आसानी से पूरा कराया जा सकता है। दूसरी ओर एक अन्य समुदाय है, जो आर्थिक रूप से गरीब है, सामाजिक रूप से अवनत है, शैक्षिक रूप से पिछड़ा हुआ है और जिसका निर्लज्जता के साथ और पश्चात्ताप किए बिना शोषण किया जाता है, दमन किया जाता है तथा जिस पर अत्याचार किया जाता है। समाज इस समुदाय का बहिष्कार करता है, सरकार उसे अपना नहीं मानती तथा जिसके पास अपने संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है और इसे न्याय, ईमानदारी तथा समान अवसर दिलाने के लिए कोई गारंटी नहीं दी जाती। ऐसे समुदाय से कहा जाता है कि वह कोई सुरक्षा-साधन नहीं रख सकता। इसका कारण यह नहीं है कि उसे किसी सुरक्षा-साधन की आवश्यकता है, बल्कि ऐसे पुराने धमकाने वाले व्यक्तियों का जिन पर अधिकारों का विधेयक प्रस्तुत किया जाता है, विचार है कि समुदाय राजनीतिक रूप में संगठित नहीं है कि वह अपनी मांग के लिए समर्थन पा सके, अतः उसे सफलतापूर्वक डराया-धमकाया जा सकता है।

यह सारा भेदभावपूर्ण व्यवहार इस बात का परिणाम है कि कोई ऐसे सिद्धांत निर्धारित नहीं किए गए हैं, जो अधिकृत हों तथा उन लोगों पर लागू हों, जो सांप्रदायिक प्रश्न में शामिल हों। सिद्धांतों के अभाव का एक और हानिकारक प्रभाव होता है। इसके कारण लोकमत के लिए अपनी भूमिका निभाना असंभव हो गया है। जनता केवल तरीके जानती है तथा यह समझती है कि एक तरीका असफल हो गया है और दूसरा सुझाया जा रहा है। जनता को यह ज्ञात नहीं होता कि एक तरीका असफल क्यों हो गया और दूसरे तरीके के लिए क्यों कहा जाता है कि उसके सफल होने की संभावना है। इसका परिणाम यह होता है कि जनता संगठित होकर दुराग्रही तथा हठी दलों को विवेक से काम लेने के लिए बाध्य करने के बजाए सांप्रदायिक प्रश्नों पर हो रही चर्चा को, जहां भी वह हो रही हो, केवल दर्शक बनकर देखती रहती है।

इसलिए मैं सांप्रदायिक समस्या के समाधान के लिए जो दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहा हूं, वह इन दो विचारों पर आधारित हैः

(1) सांप्रदायिक समस्या के समाधान की दिशा में बढ़ने के लिए आवश्यक है कि उन शासी सिद्धांतों की परिभाषा दी जाए, जिसका आह्वान अंतिम समाधान को सुनिश्चित करने के लिए किया जा सके, और

(2) शासी सिद्धांत कुछ भी क्यों न हीं, वे सभी पक्षों पर भय अथवा पक्षपात के बिना समान रूप से लागू किए जाने चाहिएं।

5

सांप्रदायिक समस्या के समाधान के लिए प्रस्ताव

मैंने कतिपय प्रारंभिक मुद्दों के बारे में अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है और अब मैं इस विषय पर चर्चा करना चाहूंगा।

सांप्रदायिक समस्या से तीन प्रश्न उभरते हैः

(1) विधानमंडल में प्रतिनिधित्व का प्रश्न.

(2) कार्यपालिका में प्रतिनिधित्व का प्रश्न और

(3) लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व का प्रश्न।

लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व

अंतिम प्रश्न पर सबसे पहले चर्चा कर ली जाए। इसे विवादास्पद प्रश्न नहीं कहा जा सकता। भारत सरकार ने यह स्वीकार कर लिया है कि सैद्धांतिक रूप से सभी समुदायों को लोक सेवाओं में निर्धारित अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए और किसी भी एक समुदाय को एकाधिकार की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस सिद्धांत का समावेश भारत सरकार के 1934 और 1943 के प्रस्ताव में कर लिया गया है और इसे

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

कार्यान्वित किए जाने के लिए नियम बना दिए गए है। यह भी निर्धारित किया गया है कि यदि इन नियमों के विरूद्ध कोई नियुक्ति की जाती है तो उसे रद्द माना जाएगा। केवल इतना ही आवश्यक है कि प्रशासकीय प्रथा को संवैधानिक दायित्व में परिवर्तित कर दिया जाए। ऐसा तभी किया जा सकता है, जब भारत सरकार अधिनियम में एक अनुसूची जोड़ दी जाए। इसमें इन प्रस्तावों में दिए गए उपबंध और अलग–अलग प्रांतों के लिए इसी प्रकार के उपबंध सम्मिलित किए जाएंगे तथा यह अनुसूची संविधान के कानून का एक भाग होगी।

कार्यपालिका में प्रतिनिधित्व का प्रश्न

इस प्रश्न से तीन बातें सामने आती हैः

(1) कार्यपालिका में प्रतिनिधियों की संख्या,

(2) कार्यपालिका का स्वरूप, और

(3) कार्यपालिका में स्थानों को भरने का तरीका।

कार्यपालिका में प्रतिनिधियों की संख्या

इस प्रश्न के समाधान के लिए जो सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए, वह यह है कि हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधत्व विधानमंडल के अपने प्रतिनिधित्व की मात्रा के बराबर होना चाहए।

जहां तक सिख, भारतीय ईसाई और आंग्ल भारतीय जैसे अन्य अल्पसंख्यक वर्गों का प्रश्न है, यह कठिन है कि विधानमंडल के अपने प्रतिनिधित्व के सही अनुपात में उन्हें कार्यपालिका में प्रतिनिधित्व दिलाया जाए। यह कठिनाई इसलिए उत्पन्न होती है कि उनकी संख्या बहुत कम है। यदि उन्हें अपनी संख्या के ठीक अनुपात में कार्यपालिका में स्थान दिए जाते हैं तो कार्यपालिका को असामान्य रूप से बढ़ाना होगा। इसलिए यह सभी कुछ तब हो सकता है, जब उनके प्रतिनिधित्व के लिए मंत्रिमंडल में एक–दो स्थान सुरक्षित कर लिए जाएं तथा एक परिपाटी स्थापित की जाए कि उन्हें उन संसदीय सचिवों में सही अनुपात में प्रतिनिधित्व मिल जाएगा, जिनकी संख्या में उस समय वृद्धि की जाएगी, जब नवीन संविधान लागू हो जाएगा।

कार्यपालिका का स्वरूप

मैं कार्यपालिका के गठन के लिए नीचे दिए गए सिद्धांतों का प्रस्ताव करूंगाः

(1) यह स्वीकार करना चाहिए कि भारत जैसे देश में, जहां बहुसंख्यक वर्ग तथा अल्पसंख्यक वर्ग में अनवरत विद्वेष है और इस कारण अल्पसंख्यक वर्ग के विरूद्ध बहुसंख्यक वर्ग द्वारा सांप्रदायिक भेदभाव का खतरा अल्पसंख्यक वर्ग के लिए सतत् संकट बना हुआ है, विधायी शक्ति की अपेक्षा कार्यकारी शक्ति का अधिक महत्व हो जाता है।

(2) उपर्युक्त (1) के अनुसार, यदि ऐसी पद्धति के अंतर्गत चुनाव में किसी पार्टी ने बहुमत प्राप्त कर लिया है तो उस पार्टी को इस परिकल्पना के आधार पर सरकार बनाने का अधिकार होगा कि उस पार्टी को बहुमत का विश्वास प्राप्त है, जब कि भारतीय परिस्थितियों में यह असमर्थनीय है। भारत में बहुसंख्यक वर्ग सांप्रदायिक बहुसंख्यक वर्ग है, न कि राजनीतिक बहुसंख्यक वर्ग। इसी अंतर के कारण इंग्लैंड में जो कल्पना उभरती है, उसे भारत की परिस्थितियों में वैध परिकल्पना नहीं माना जा सकता।

(3) कार्यपालिका को विधानमंडल में बहुमत वाली पार्टी की समिति नहीं होनी चाहिए। इसका इस प्रकार निर्माण किया जाना चाहिए कि इसका आदेश विधानमंडल के बहुमत से नहीं लिया जाएगा, अपितु उसके अल्पमत से भी लिया जाएगा।

(4) कार्यपालिका का स्वरूप गैर–संसदीय होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि वह विधानमंडल की समयावधि से पूर्व हटाई नहीं जा सकेगी।

(5) कार्यपालिका का संसदीय स्वरूप होने का अर्थ है कि कार्यपालिका के सदस्य विधानमंडल के सदस्यों में से चुने जाएंगे और उन्हें सदन में बैठने, बोलने, मत देने तथा प्रश्नों के उत्तर देने का अधिकार होगा।

कार्यपालिका में स्थानों के भरने का तरीका

इस संबंध में मैं नीचे दिए गए सिद्धांतों को अपनाने का प्रस्ताव करूंगाः

(1) सरकार का कार्यकारी अध्यक्ष होने के नाते प्रधानमंत्री को पूरे सदन का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

(2) यदि मंत्रिमंडल में किसी अल्पसंख्यक वर्ग का कोई व्यक्ति प्रतिनिधित्व करता है तो उसे विधानमंडल में अपने समुदाय के सदस्यों का विश्वास प्राप्त होना चाहिए, और

(3) मंत्रिमंडल के किसी सदस्य को तब तक नहीं हटाया जाएगा, जब तक कि भ्रष्टाचार अथवा देशद्रोह के आधार पर सदन में उस पर महाभियोग न लगाया गया हो।

इन सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए मेरा प्रस्ताव है कि प्रधानमंत्री तथवा बहुसंख्यक वर्ग के समुदाय के मंत्रिमंडल के सदस्यों का चुनाव पूरे सदन द्वारा एकल परिवर्तनीय मत द्वारा किया जाना चाहिए तथा मंत्रिमंडल में अलग–अलग अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधियों का चुनाव विधानमंडल के प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों द्वारा एकल परिवर्तनीय मत द्वारा किया जाना चाहिए।

विधानमंडल में प्रतिनिधित्व का प्रश्न

यह सबसे कठिन प्रश्न है। अन्य सभी प्रश्न इस प्रश्न के समाधान पर निर्भर हैं। इसमें दो मुद्दे उठते हैं :

(1) प्रतिनिधित्व की संख्या, और

(2) निर्वाचन–क्षेत्र का स्वरूप।

प्रतिनिधित्व की संख्या

मैं सर्वप्रथम अपने प्रस्ताव प्रस्तुत करूंगा और उसके बाद उन सिद्धांतों की व्याख्या करूंगा, जिन पर ये प्रस्ताव आधारित हैं। इन प्रस्तावों को अगले पृष्ठ पर दी गई तालिकाओं में बताया गया है, जिनमें ब्रिटिश भारत के केन्द्रीय विधानमंडल और प्रांतीय विधानमंडल में अलग अलग समुदायों के लिए प्रतिनिधित्व का क्रम दिया गया है।

विधान–मंडलों में प्रतिनिधित्व का प्रस्तावित अनुपात

टिप्पणी – नीचे दी गई तालिकाओं में जनसंख्या का प्रतिशत जनगणना के आंकड़ों से भिन्न है, क्योंकि उन्हें आदिवासी जातियों की जनसंख्या को घटाकर माना गया है।

1. केन्द्रीय सभा

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	54.68	40
मुसलमान	28.50	32
अनुसूचित जातियां	14.30	20
भारतीय ईसाई	1.16	3
सिख	1.49	4
आंग्ल भारतीय	0.05	1

2. बंबई

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	76.42	40
मुसलमान	9.98	28
अनुसूचित जातियां	9.64	28
भारतीय ईसाई	1.75	2
आंग्ल भारतीय	0.07	1
पारसी	0.44	1

3. मद्रास

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	71.21	40
अनुसूचित जातियां	16.53	30
मुसलमान	7.98	24
भारतीय ईसाई	4.10	5
आंग्ल भारतीय	0.06	1

4. बंगाल

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
मुसलमान	56.50	40
हिन्दू	30.03	33
अनुसूचित जातियां	12.63	25
भारतीय ईसाई	0.19	1
आंग्ल भारतीय	0.05	1

5. संयुक्त प्रांत

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	62.29	40
अनुसूचित जातियां	21.40	29
मुसलमान	15.30	29
भारतीय ईसाई	0.24	1
आंग्ल भारतीय	0.03	1

6. पंजाब

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
मुसलमान	57.06	40
हिन्दू	22.17	28
सिख	13.22	21
अनुसूचित जातियां	4.39	9
भारतीय ईसाई	1.71	2

7. मध्य प्रांत–बरार

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	72.20	40
अनुसूचित जातियां	20.23	34
मुसलमान	5.70	25
भारतीय ईसाई	0.36	1

8. बिहार

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	70.76	40
मुसलमान	15.05	30
अनुसूचित जातियां	13.80	28
भारतीय ईसाई	1.71	2

साभार : अपनी योग्यता के अनुरूप कमाएँ। पेज संख्या 173 से 187 तक ब्रायन ट्रेसी

9. आसाम

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	45.60	40
मुसलमान	44.59	39
अनुसूचित जातियां	8.76	19
भारतीय ईसाई	0.48	2

10. उड़ीसा

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	70.80	40
अनुसूचित जातियां	17.66	36
मुसलमान	2.07	22
भारतीय ईसाई	0.37	2

11. सिंध

समुदाय	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
हिन्दू	23.08	40
मुसलमान	71.30	40
अनुसूचित जातियां	4.26	19
भारतीय ईसाई	0.29	1

6.

अल्पसंख्यक वर्गों पर प्रभाव

भारत सरकार अधिनियम, 1935 में विहित तथा प्रस्तावों में निर्धारित अलग–अलग अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधित्व में परिवर्तनों को निम्न तालिका में परिवर्तित करना वांछनीय प्रतीत होता हैः

मुसलमानों पर प्रभाव

विधानमंडल	जनसंख्या का अनुपात	प्रतिनिधित्व का अनुपात: भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत	प्रतिनिधित्व का अनुपात: प्रस्तावित योजना के अंतर्गत
केन्द्रीय	28.50	32.[illegible]	32
मद्रास	8.00	13.49	24
बंबई	10.00	17.40	28
संयुक्त प्रांत	15.30	28.95	29
मध्य प्रांत	5.70	12.50	25
बिहार	15.00	26.32	28
आसाम	44.60	31.48	38
उड़ीसा	2.00	6.66	22

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

अनुसूचित जातियों पर प्रभाव

विधानमंडल	जनसंख्या का अनुपात	प्रतिनिधित्व का अनुपात: भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत	प्रतिनिधित्व का अनुपात: प्रस्तावित योजना के अंतर्ग
केन्द्रीय	14.30	7.60	20
मद्रास	16.50	13.90	30
बंबई	9.60	8.50	28
बंगाल	12.60	12.00	25
संयुक्त प्रांत	21.40	8.70	29
पंजाब	4.40	4.50	9
मध्य प्रांत	20.20	17.80	34
बिहार	13.80	9.80	28
आसाम	8.70	6.50	20
उड़ीसा	17.60	10.00	36
सिंध	4.20	शून्य	19

भारतीय ईसाइयों पर प्रभाव

विधानमंडल	जनसंख्या का अनुपात	प्रतिनिधित्व का अनुपात: भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत	प्रतिनिधित्व का अनुपात: प्रस्तावित योजना के अंतर्ग
केन्द्रीय	1.16	3.00	3
मद्रास	4.10	4.20	5
बंबई	1.70	1.70	2
बंगाल	0.19	0.80	1
संयुक्त प्रांत	0.24	0.90	1
पंजाब	1.70	1.14	2
मध्य प्रांत	0.35	शून्य	1
बिहार	1.70	0.66	2
आसाम	0.48	0.90	2
उड़ीसा	0.37	0.16	2
सिंध	0.29	शून्य	1

सिखों पर प्रभाव

विधानमंडल	जनसंख्या का अनुपात	प्रतिनिधित्व का अनुपात: भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत	प्रतिनिधित्व का अनुपात: प्रस्तावित योजना के अंतर्ग
केन्द्रीय	1.50	2.40	4
पंजाब	13.20	18.29	21

हिन्दुओं पर प्रभाव

विधानमंडल	जनसंख्या का अनुपात	प्रतिनिधित्व का अनुपात: भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत	प्रतिनिधित्व का अनुपात: प्रस्तावित योजना के अंतर्ग
बंगाल	30.00	20.00	33
पंजाब	22.10	20.00	28
सिंध	23.80	31.60	40

7.

प्रस्तावों में विहित सिद्धांत

अब मैं उन सिद्धांतों को बताना चाहूंगा, जिनके आधार पर यह वितरण किया गया है :

(1) बहुसंख्यक वर्ग का शासन सैद्धांतिक रूप से असमर्थनीय और व्यवहार में असंगत होता है। बहुसंख्यक वर्ग को प्रतिनिधित्व का सापेक्ष बहुसंख्यक समुदाय स्वीकार किया जा सकता है, परंतु यह कभी भी पूर्ण बहुमत का दावा नहीं कर सकता।

(2) विधानमंडल में बहुसंख्यक समुदाय को दिए जाने वाले प्रतिनिधित्व का सापेक्ष बहुमत इतना बड़ा नहीं होना चाहिए कि बहुसंख्यक वर्ग सबसे छोटे अल्पसंख्यक वर्गों की सहायता से अपना शासन स्थापित कर ले।

(3) सीटों का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि बहुसंख्यक वर्ग तथा प्रमुख अल्पसंख्यक वर्गों में से कोई वर्ग मिलकर उसे इतना बहुमत न दे दे कि वह अल्पसंख्यक वर्ग के हित के प्रति सर्वथा उदासीन हो जाए।

(4) वितरण ऐसा होना चाहिए कि यदि सभी अल्पसंख्यक वर्ग मिल जाएं तो वे बहुसंख्यक वर्ग पर आश्रित हुए बिना अपनी सरकार बना सकें।

(5) बहुसंख्यक वर्ग से ली गई वरीयता को अल्पसंख्यक वर्गों में उनकी सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति और शैक्षिक दशा के विपरीत अनुपात में वितरित किया जाना चाहिए, ताकि अल्पसंख्यक वर्ग को, जो बड़ा है और जिसकी सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है, उस अल्पसंख्यक वर्ग की अपेक्षा कम वरीयता मिलती है, जिसकी संख्या कम है और जिसकी शैक्षिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति अन्य वर्गों की अपेक्षा घटिया होती है।

यदि मैं ऐसा कहूं कि प्रतिनिधित्व संतुलित प्रतिनिधित्व है, तो कोई भी समुदाय ऐसी स्थिति में नहीं रहता कि वह अपने सदस्यों की अधिक संख्या के कारण अन्य समुदायों पर अपना आधिपत्य जमाए। मुसलमानों की हिन्दू बहुसंख्यक वर्ग के प्रति शिकायत तथा हिन्दू और सिखों की मुसलमानों के बहुसंख्यक वर्ग के साथ शिकायत केन्द्र और प्रांतों में पूर्णतः समाप्त की जा चुकी है।

8

निर्वाचन–क्षेत्र की प्रकृति

निर्वाचन–क्षेत्रों के प्रश्न के बारे में आगे दी गई प्रस्थापनाएं स्वीकार की जानी चाहिए :

(1) किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संयुक्त निर्वाचन–क्षेत्र अथवा पृथक निर्वाचन–क्षेत्र केवल निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के साधन का मामला है। यह कोई सैद्धांतिक मामला नहीं है।

(2) इसका उद्देश्य यह है कि अल्पसंख्यक वर्ग को विधानमंडल के लिए ऐसे उम्मीदवारों का चयन करने के योग्य बना दिया जाए, जो वास्तविक होंगे और अल्पसंख्यक वर्ग के नाममात्र के प्रतिनिधि नहीं होंगे।

(3) यदि एक ओर पृथक निर्वाचन–क्षेत्र अल्पसंख्यक वर्ग को इस बात की पूर्ण गारंटी देता है कि उसके प्रतिनिधि केवल वही होंगे जिन्हें उसका विश्वास प्राप्त है, तो दूसरी ओर निर्वाचन–क्षेत्र प्रणाली में अल्पसंख्यक वर्गों को समान संरक्षण प्रदान किया जाता है। अतः इसकी अवहेलना नहीं की जानी चाहिए।

(4) इसे संभावित विकल्प समझा जा सकता है कि चार सदस्यों के निर्वाचन–क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग को दोहरा मत प्राप्त करने का अधिकार हो, बशर्ते कि उसे अल्पसंख्यक वर्ग के मतों का न्यूनतम प्रतिशत प्राप्त हो।

9.

वे मामले जिनके बारे में चर्चा नहीं की गई

विशेष सुरक्षा का प्रश्न

कुछ अल्पसंख्यक वर्गों की ओर से की गई अन्य मांगे इस प्रकार हैं :

(1) अल्पसंख्यक वर्गों की दशा के संबंध में जानकारी देने के लिए कानूनी अधिकारी की व्यवस्था,

(2) शिक्षा के लिए राज्य सहायता की कानूनी व्यवस्था और

(3) भूमि बंदोबस्त के लिए कानूनी व्यवस्था। परंतु उनका स्वरूप सांप्रदायिक न हो। अतः मैं उनके बारे में यहां विस्तार से चर्चा करना नहीं चाहूंगा।

आदिवासी जनजातियां

यह स्पष्ट है कि मैंने अपने प्रस्तावों में आदिवासी जनजातियों को शामिल नहीं किया है, यद्यपि उनकी संख्या सिखों, आंग्ल भारतीयों, भारतीय ईसाइयों और पारसियों से अधिक है। मैं कारण बताना चाहता हूं कि मैंने अपनी योजना में उन्हें क्यों शामिल नहीं किया है। आदिवासी जनजातियों ने अभी तक ऐसी राजनीतिक सूझबूझ हालिस नहीं की है, जिससे वे अपने राजनीतिक अवसरों का सर्वोत्तम उपयोग कर सकें। वे आसानी से बहुसंख्यक वर्ग अथवा अल्पसंख्यक वर्ग के हाथों का खिलौना बन जाते हैं और इस प्रकार वे न केवल संतुलन बिगाड़ देते हैं, बल्कि अपना भी कोई भला नहीं कर पाते। उनके विकास की वर्तमान अवस्था में मुझे लगता है कि इन पिछड़े समुदायों के लिए उचित मार्ग यही है कि उनके प्रशासन के लिए एक संवैधानिक आयोग की उसी आधार पर स्थापना कर दी जाए जिन्हें अब हम बहिष्कृत क्षेत्र कहते हैं, जो दक्षिण अफ्रीकी संविधान के लिए अपनाया गया था। प्रत्येक प्रांत में बहिष्कृत क्षेत्र स्थित हैं, अतः ऐसे प्रत्येक प्रांत पर दबाव डालना चाहिए कि वह इन क्षेत्रों के प्रशासन के लिए निर्धारित राशि का वार्षिक योगदान करें।

देशी राज्य

आप देखेंगे कि मेरे प्रस्तावों में देशी राज्य शामिल नहीं किए गए हैं। मैं देशी राज्यों को शामिल किए जाने का विरोधी नहीं हूं, परंतु उनके शामिल किए जाने के नियम और शर्तें इस प्रकार हैः

(1) ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के मध्य विभाजित प्रभुसत्ता के द्विभाजन को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जाए,

(2) न्यायिक और राजनीतिक सीमाएं जो ब्रिटिश भारत को देशी राज्यों से अलग करती हैं, समाप्त हो जाएंगी। ब्रिटिश भारत या देशी राज्य जैसी कोई सत्ता शेष नहीं रहेगी और उनके स्थान पर केवल एक सत्ता होगी, जिसे भारत कहा जाएगा, और

(3) सम्मिलित किए जाने के निबंधन और शर्तें भारत को औपनिवेशिक राज्य के पूर्ण और समग्र अधिकारों को प्राप्त करने में बाधा नहीं डालती। मैंने देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत के विलय की एक योजना बनाई है, जिससे इन उद्देश्यों की सिद्धि हो जाएगी। मैं इस योजना का अधिक विवरण देकर अपने भाषण को बोझिल नहीं बनाना चाहता। इस समय यह ठीक है कि ब्रिटिश भारत देशी राज्यों के साथ मिलकर अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर हो।

10

प्रस्तावों के परिप्रेक्ष्य में पाकिस्तान

मेरे प्रस्ताव संयुक्त भारत के लिए हैं। ये प्रस्ताव इस आशा से प्रस्तुत किए गए हैं कि मुसलमान पाकिस्तान के स्थान पर इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेंगे, क्योंकि ये प्रस्ताव पाकिस्तान द्वारा दी जाने वाली सुरक्षा की अपेक्षा अधिक सुरक्षा प्रदान करेंगे। मैं पाकिस्तान का विरोधी नहीं हूं। मेरा विश्वास है कि यह आत्म–निर्णय के सिद्धांत के आधार पर बनाया गया है और इसको अब चुनौती देने का समय व्यतीत हो चुका है। मैं उन्हें सिद्धांत का लाभ देने के लिए तैयार हूं, परंतु शर्त यह है कि मुसलमान उस क्षेत्र में रहने वाले गैर–मुसलमानों को उन सिद्धांतों के लाभ से वंचित न करें। परंतु मेरा विचार है कि मैं मुसलमानों का ध्यान सुरक्षा की एक अन्य तथा अपेक्षाकृत अधिक हितकर योजना की ओर आकर्षित करूं। मेरा दावा है कि पाकिस्तान ने जो योजना बनाई है, उससे कहीं अधिक हितकर मेरी योजना है। मैं उन मुद्दों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा, जो मेरी योजना के पक्ष में हैं। वे मुद्दे इस प्रकार हैं :

(1) मेरे प्रस्ताव के अंतर्गत सांप्रदायिक बहुसंख्यक वर्ग का खतरा, जिसके आधार पर पाकिस्तान का निर्माण होना है, हटा दिया जाए।

(2) मेरे प्रस्ताव के अंतर्गत इस समय मुसलमान जो लाभ उठा रहे हैं, उसे न छेड़ा जाए।

(3) गैर–पाकिस्तानी प्रांतों में मुसलमानों की स्थिति उनके प्रतिनिधित्व में वृद्धि करके बहुत मजबूत कर दी गई है, जिसे वे पाकिस्तान बन जाने पर प्राप्त नहीं कर सकते हैं और उनकी स्थिति इस समय के अपेक्षाकृत अधिक दयनीय हो जाएगी।

11

हिन्दुओं को चेतावनी

सांप्रदायिक प्रश्न की सबसे बड़ी कठिनाई हिन्दुओं का इस बात पर जोर देना है कि बहुमत का शासन पवित्र है और इसे हर हालत में बनाए रखना है। हिन्दू इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि एक अन्य प्रकार का भी नियम होता

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

है जो ऐसे क्षेत्रों में प्रचलित है, जहां व्यक्ति और देश के बीच महत्वपूर्ण विवाद उठते हैं और जहां सर्वसम्मति का नियम माना जाना है। यदि वे उस स्थिति की जांच करने का कष्ट उठाएं तो वे यह महसूस करेंगे कि इस प्रकार का नियम कोई कपोल–कल्पित नहीं है, परंतु इसका अस्तित्व है। उन्हें जूरी–पद्धति का ही उदाहरण लेना चाहिए। जूरी में जांच सर्वसम्मति के सिद्धांत पर आधारित होती है। इसका निर्णय न्यायाधीश के लिए तभी बाध्यकारी होता है, जब जूरी ने सर्वसम्मति से निर्णय किया हो। एक अन्य उदाहरण लीग ऑफ नेशन्स का दिया जा सकता है। लीग ऑफ नेशन्स में निर्णयों का क्या नियम था? वह नियम सर्वसम्मति का था। यह स्पष्ट है कि यदि हिन्दुओं द्वारा सर्वसम्मति का नियम विधानमंडल तथा कार्यपालिका में निर्णय लेने के लिए स्वीकार कर लिया जाए तो भारत में सांप्रदायिक समस्या जैसी कोई वस्तु नहीं होगी।

यह बात किसी हिन्दू से पूछी भी जा सकती है कि यदि वह अल्पसंख्यक वर्गों को संवैधानिक सुरक्षा देने के लिए सहमति नहीं देता है, तो क्या वह सर्वसम्मति के नियम के लिए सहमत है? दुर्भाग्यवश वह दोनों में से किसी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

बहुसंख्यक वर्ग के शासन के बारे में हिन्दू किसी प्रकार की सीमा को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। वह ऐसा बहुमत चाहता है, जो पूर्ण बहुमत हो। उसे सापेक्ष बहुमत से संतोष नहीं होगा। उसे यह सोचना चाहिए कि क्या पूर्ण बहुमत के बारे में उसका आग्रह उचित है, जिसे राजनीति के पंडित स्वीकार कर सकें। वह इस तथ्य से अवगत नहीं है कि अमरीका का संविधान भी बहुमत के एकाधिपत्य वाले शासन का समर्थन नहीं देता, जबकि हिन्दु उस बारे में बराबर आग्रह कर रहे हैं।

मैं इस बात को अमरीका के संविधान का उदाहरण देकर समझाना चाहूंगा। मौलिक अधिकारों का खंड ले लीजिए। इस खंड का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि जो मामले मौलिक अधिकारों में सम्मिलित किए गए हैं, वे इतनी गहरी चिंता के विषय हैं कि केवल बहुसंख्यक वर्ग का शासन ही उनमें हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त नहीं है। अमरीका के संविधान से एक अन्य उदारण लिया जाए। उसमें यह प्रावधान किया गया है कि संविधान के किसी भाग में उस समय तक परिवर्तन नहीं किया जा सकता, जब तक तीन चौथाई बहुमत प्रस्ताव की स्वीकृति न दे दे और यह प्रस्ताव राज्यों द्वारा अनुमोदित न करा लिया जाए। इसका क्या अभिप्राय है? इसका अभिप्राय है कि अमरीका के संविधान में कतिपय प्रयोजनों के लिए केवल बहुमत के शासन को ही सक्षम नहीं माना गया है।

इन सभी मामलों से अनेक हिन्दू अलबत्ता परिचित हैं। दुख इस बात का है कि वे उनसे सही पाठ नहीं सीखते। यदि वे ऐसा करें तो उन्हें यह महसूस होगा कि बहुमत के शासन का नियम उतना पवित्र नहीं है, जितना वे उसे समझते हैं। बहुमत के शासन को एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता बल्कि उसे एक नियम के रूप में मान लिया जाता है। मैं यह भी बताना चाहूंगा कि उसे क्यों मान लिया जाता है। उसे दो कारणों से मान लिया जाता हैः (1) बहुमत सदैव राजनीतिक बहुमत होता है, और (2) राजनीतिक बहुमत का निर्णय अल्पमत के दृष्टिकोण को उस सीमा तक स्वीकार और आत्मसात कर लेता है कि वह इस निर्णय के विरूद्ध विद्रोह करने की चिंता ही नहीं करता।

भारत में बहुमत राजनीतिक बहुमत नहीं होता। भारत में बहुमत पैदा होता है, इसका निर्माण नहीं किया जाता। सांप्रदायिक बहुमत तथा राजनीतिक बहुमत में यही अंतर है। कोई भी राजनीतिक बहुत स्थिर या स्थायी नहीं होता। वह केवल बहुमत ही है, जिसका सदैव निर्माण, खंडन और पुनर्निर्माण किया जाता है। सांप्रदायिक बहुमत स्थायी और इसका दृष्टिकोण स्थिर होता है। कोई भी उसका विनाश कर सकता है, परंतु उसका रूपांतरण नहीं कर सकता। यदि राजनीतिक बहुमत के लिए इतनी अधिक आपत्ति है, तो सांप्रदायिक बहुमत के लिए आपत्ति कितनी विनाशकारी होगी?

हिन्दू श्री जिन्ना से पूछ सकते हैं कि 1930 में जब उन्होंने 14 मुद्दे तैयार किये थे, तब उन्होंने बहुमत के शासन के सिद्धांत पर इस सीमा तक क्यों बल दिया था कि 14 मुद्दों में से एक मुद्दे की शर्त यह थी कि वरीयता प्रदान करते समय सीमाएं तय कर लेनी चाहिए, जिससे बहुमत अल्पमत अथवा उसके समान न हो जाए। हिन्दू श्री जिन्ना से पूछ सकते हैं कि जब वह मुसलमानों के प्रांतों में मुसलमानों के बहुमत के पक्ष में हैं, फिर केन्द्र में वह हिन्दू बहुमत का विरोध क्यों करते हैं? परंतु हिन्दुओं को यह महसूस करना चाहिए कि इन प्रश्नों का यह अभिप्राय हो सकता है कि श्री जिन्ना की स्थिति में परस्पर विरोध है। उनसे बहुमत के शासन के सिद्धांत की पुष्टि की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

राजनीति में बहुमत शासन का सिद्धांत त्याग देने से हिन्दुओं के जीवन के अन्य पक्षों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। सामाजिक जीवन के एक तत्व के रूप में वे बहुमत में ही रहेंगे। उनका व्यापार और वाणिज्य पर एकाधिकार होगा, जिसका वे लाभ उठाते हैं। उन्हें उस संपत्ति का एकाधिकार होगा, जो उनके पास है। मेरे प्रस्तावों में यह नहीं हैं कि वे सर्वसम्मति के सिद्धांत को स्वीकार करें। मेरे प्रस्तावों में यह भी नहीं है कि हिन्दू बहुमत के शासन के सिद्धांत का परित्याग कर दें। मैं उनसे केवल यही कहता हूं कि वे सापेक्ष बहुमत से संतुष्ट हो जाएं। क्या उनके लिए यह बात इतनी भारी है कि वे इसे स्वीकार न कर सकें?

ऐसे बलिदान के बिना बहुसंख्यक विश्व में कहीं भी यह कहने का औचित्य नहीं रखते कि अल्पसंख्यक भारत की स्वतंत्रता क मार्ग में बाधक बने हुए हैं। यह मिथ्या प्रचार काम नहीं आएगा, क्योंकि अल्पसंख्यक ऐसा कुछ भी नहीं कर रहे हैं। वे स्वतंत्रता और उसमें जो खतरे हैं उसे झेलने के लिए तैयार हैं, किन्तु शर्त यह है कि उन्हें संतोषजनक सुरक्षा दी जाए। अल्पसंख्यक वर्ग का यह संकेत एक ऐसा मामला न समझा जाए, जिसके लिए हिन्दुओं को कृतज्ञ होने की आवश्यकता नहीं है। इसकी तुलना आयरलैंड में घटित घटना से करनी चाहिए। आयरिश राष्ट्रवादियों के नेता श्री रेडमांड ने अल्स्टर के नेता श्री कार्सन से एक बार कहा था : 'संयुक्त आयरलैंड के लिए सहमति दें। आप जिस प्रकार की सुरक्षा की मांग करें, वह आपको दी जाएगी। यह कहा जाता हैं कि उन्होंने मुड़कर कहा : 'धिक्कार है आपकी सुरक्षा पर, हम नहीं चाहते कि आप हम पर शासन करें।' भारत के अल्पसंख्यक वर्ग ने ऐसा नहीं कहा है। वे सुरक्षा के साधनों से संतुष्ट हैं। मैं हिन्दुओं से पूछना चाहता हूं कि क्या यह संतोष का विषय नहीं है? मुझे विश्वास है कि यह ऐसा ही है।

12

मेरे मस्तिष्क में सांप्रदायिक समस्या के समाधान के लिए ये कुछ विचार हैं। वे अखिल भारतीय अनुसूचित जातियों के संघ को वचनबद्ध नहीं करते। मैं भी इन्हें मानने के लिए बाध्य नहीं हूं। मैं उनका उल्लेख केवल इसलिए कर रहा हूं कि संभव है इससे कोई नया रास्ता निकल आए। मेरा बल विशेष रूप से उस सिद्धांत पर है जो मैंने प्रतिपादित किया है, वास्तविक प्रस्तावों पर नहीं। यदि सिद्धांत स्वीकार कर लिए जाते हैं तो मुझे विश्वास है कि सांप्रदायिक प्रश्न का समाधान इतना दुष्कर नहीं रहेगा, जितना गत वर्षों में रहा है।

भारतीय गतिरोध के समाधान की समस्या सरल नहीं है। मुझे याद है कि मैंने एक इतिहासकार की यह बात पढ़ी थी कि 1867 के महासंघ से पूर्व जर्मनी की दशा की तरह की 'दैवी उलझन' थी। चाहे यह बात जर्मनी के लिए सत्य हो अथवा असत्य, लेकिन मुझे यह लगता है कि यह भारत की वर्तमान परिस्थितियों का बहुत सही वर्णन है। जर्मनी तो इस उलझन से उबर गया। ऐसा भले ही एक बार में हुआ हो, किंतु लगातार प्रयत्न होते रहे और युद्ध आरंभ होने से पूर्व जर्मनी उन लोगों का देश बन गया, जो एकता के सूत्र में बंधे थे वे अपने विचार में एक थे, वे अपने दृष्टिकोण में एक थे तथा समान भाग्य में अपने विश्वास में एक थे। भारत में अभी तक अपनी उलझन से उबरने में सफलता नहीं प्राप्त की है। ऐसा नहीं है कि उसे ऐसा करने के लिए अवसर न मिला हो। वास्तव में ऐसे अनेक अवसर आए है। पहला अवसर 1927 में मिला था, जब लार्ड बर्किनहेड ने भारतीयों को चुनौती दी थी और उनसे कहा था कि वे भारत का संविधान तैयार करें। वह चुनौती स्वीकार कर ली गई। एक समिति का गठन किया गया, ताकि संविधान तो तैयार किया जाए। एक संविधान तैयार किया गया और उसे 'नेहरू संविधान' की संज्ञा दी गई। परंतु भारतीयों ने इसे स्वीकार नहीं किया और जब उसे समाप्त कर दिया गया तो किसी ने आंसू नहीं बहाए। दूसरा अवसर भारतीयों को 1930 में दिया गया, जब वे गोलमेज सम्मेलन में एकत्र हुए थे। इस बार भी भारतीय अपने संविधान की विरचना करने की भूमिका अदा करने में असफल रह गए। एक तीसरा प्रयास अभी हाल में सप्रू समिति द्वारा किया गया। इस समिति के प्रस्ताव भी असफल रहे।

अब एक और प्रयास के लिए न तो उत्साह है और न आशा। लोग भाग्यवादी हो गए है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक प्रयास जब असफल ही होना है, तो प्रयास करने की आवश्यकता ही क्या है? साथ ही मैं महसूस करता हूं कि किसी भी भारतीय को इतना हतोत्साहित अथवा इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि यह गतिरोध ऐसा बदबूदार हो जाए, जैसे कि मेरा मरा हुआ कुत्ता, और कोई यह कहे कि वह राजनीतिक युद्ध को, जो देश में हो रहा है, उसे एक दर्शक की तरह देखने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। गत वर्षों की असफलताओं से किसी भी व्यक्ति को निरूत्साहित नहीं होना चाहिए। मैं यह महसूस करता हूं कि यद्यपि यह सत्य है कि सांप्रदायिक प्रश्न पर समझौता करने के सभी प्रयास असफल हो गए हैं, किन्तु इस असफलता का कारण भारतीयों का जन्मजात दोष नहीं है, अपितु त्रुटिपुर्ण दृष्टिकोण इस असफलता का कारण है। मैं आश्वस्त हूं कि यदि मेरे प्रस्तावों पर निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो वे प्रस्ताव स्वीकार्य होंगे। इन प्रस्तावों में एक नया दृष्टिकोण है और इसलिए मैं अपने देशवासियों से इनकी सिफारिश करता हूं।

इससे पूर्व कि मैं अपना भाषण समाप्त करूं मैं अपने आलोचकों को यह चेतावनी देना चाहता हूं कि वे मेरे प्रस्तावों में कुछ हद तक संशोधन कर सकते हैं, परंतु उनके लिए यह आसान नहीं है कि वे इन्हें रद्द कर दें। यदि वे इन्हें रद्द करना ही चाहें तो उन्हें पहले उन सिद्धांतों का खंडन करना होगा, जिन पर ये आधारित हैं।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय
खंड–2, पेज संख्या 137 से 165 तक
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

धर्मचक्र प्रवर्तन अष्टांगिक–मार्ग या सम्यक्मार्ग

1. इसके आगे बुद्ध ने उन परिब्राजकों को अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। बुद्ध ने कहा – इस मार्ग के आठ अंग हैं।

2. बुद्ध ने सर्वप्रथम सम्मा दिट्ठी (=सम्यक् दृष्टि) की व्याख्या की जो अष्टांगिक मार्ग में प्रथम है और प्रधान है।

3. सम्यक् दृष्टि का महत्व समझाने के लिये बुद्ध ने परिब्राजकों से कहा :–

4. 'हे परिब्राजको! तुम्हे इस का बोध होना चाहिये कि यह संसार एक कारागार है और आदमी इस कारागार में एक कैदी है।

5. इस कारागार में इतना अधिक अन्धकार है कि यहां कुछ भी दिखाई नहीं देता। कैदी को यह तक दिखाई नहीं देता कि वह कैदी है।

6. इतना ही नहीं कि बहुत अधिक समय तक इस अन्धेरी कोठरी में ही पड़े रहने के कारण आदमी एकदम अन्धा हो गया हो, बल्कि उसे इस बात में भी बड़ा सन्देह हो गया है कि प्रकाश नाम की कोई चीज भी कभी कहीं हो सकती है।

7. मन ही एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से आदमी को प्रकाश की प्राप्ति हो सकती है।

8. लेकिन इन कारागार–वासियों के दिमाग की भी अवस्था ऐसी नहीं है कि यह उद्देश्य पूरा हो सके।

9. इनका दिमाग जरासा प्रकाश मात्र आने देता है, इतना ही है कि जिनके पास आँख है वह यह देख सकें कि अन्धकार नाम की भी कोई वस्तु है।

10. इसलिये ऐसी समझ बड़ी सदोष है।

11. लेकिन हे परिब्राजको! कैदी की स्थिति ऐसी निराशाजनक नहीं है जैसी यह प्रतीत होती है।

12. क्योंकि आदमी में एक बल है, एक शक्ति है जिसे संकल्प–बल या इच्छा–शक्ति कहा जाता है। जब आदमी के सम्मुख कोई उपयुक्त आदर्श उपस्थित होता है तो इस इच्छा–शक्ति को जाग्रत और क्रिया–शील बनाया जा सकता है।

13. आदमी को यदि कहीं से इतना भी प्रकाश मिल जाये कि वह यह देख सके कि उसे अपनी इच्छा–शक्ति को किस दिशा में अग्रसर करना चाहिये, तो आदमी अपनी इच्छा–शक्ति का ऐसा संचालन कर सकता है कि वह अन्त में उसे बन्धन–मुक्त कर दे।

14. इसलिये यद्यपि आदमी बन्धन में है तो भी वह स्वतन्त्र हो सकता है; वह किसी भी समय ऐसा पहला कदम उठा सकता है कि एक न एक दिन व स्वतन्त्र होकर रहे।

15. यह इसलिये कि हम जिस किसी दिशा में भी अपने मन को ले जाना चाहे, हम उसे उस दिशा में ले जा सकते हैं। मन ही है जो हमें जीवन–रूपी कारागार का कैदी बनाता है और यह मन ही है जो हमें कैदी बनाये रखता है।

16. लेकिन मन ने ही जिसे बनाया है, मन ही उसे नष्ट भी कर सकता है, मन अपनी कृति को मटियामेट भी कर सकता है। यदि इसने आदमी को बंधन में बांधा है तो ठीक दिशा में अग्रसर होने पर यही आदमी को बंधन–मुक्त कर सकता है।

17. यह है जो सम्यक् दृष्टि कर सकती है।

18. तब परिब्राजकों ने प्रश्न किया ''सम्यक् दृष्टि का अन्तिम उद्देश्य क्या है?'' बुद्ध ने उत्तर दिया– ''अविद्या का विनाश ही सम्यक्–दृष्टि का उद्देश्य है। यह मिथ्या–दृष्टि की विरोधिनी है।

19. ''और अविद्या का अर्थ है कि आदमी दुःख को न जान सके, आदमी दुःख के निरोध के उपाय को न जान सके, आदमी इन आर्य–सत्यों को न जान सके।

20. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी कर्म–काण्ड के क्रिया–कलाप को व्यर्थ समझे, आदमी शास्त्रों की पवित्रता की मिथ्या–धारण से मुक्त हो।

21. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी मिथ्या–विश्वास से मुक्त हो, आदमी यह न समझता रहे कि कोई भी बात प्रकृति के नियमों के विरूद्ध घट सकती है।

22. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी ऐसी सब मिथ्या–धारणाओं से मुक्त हो जो आदमी के मन की कल्पना–मात्र हैं और जिनका आदमी के अनुभव या यथार्थता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।

23. सम्यक्–दृष्टि का मतलब है कि आदमी का मन स्वतन्त्र हो, आदमी के विचार स्वतन्त्र हों।

24. हर आदमी की कुछ आशायें होती हैं, आकांक्षायें होती हैं, महत्वाकांक्षायें होती हैं। सम्यक् संकल्प का मतलब है कि हमारी आशायें, हमारी आकांक्षायें ऊंचे स्तर की हों, निम्नस्तर की न हों, हमारे योग्य हों, अयोग्य न हों।

25. सम्यक्वाणी का मतलब है कि आदमी (1) सत्य ही बोले, (2) आदमी असत्य न बोले, (3) आदमी दूसरों की बुराई न करता फिरे, (4) आदमी दूसरों के बारे में झूठी बातें न फैलाता फिरे, (5) आदमी किसी के प्रति गाली–गलौज का वा कठोर वचनों का व्यवहार न करें, (6) आदमी सभी के साथ विनम्र वाणी का व्यवहार करे, (7) आदमी व्यर्थ की, बेमतलब मूर्खतापूर्ण बातें न करता रहे, बल्कि उसकी वाणी बुद्धिसंगत हो, सार्थक हो और सोद्देश्य हो।

26. जैसा मैंने समझाया सम्यक्–वाणी का व्यवहार न किसी के भय की अपेक्षा रखता है, और न किसी के पक्षपात की। इसका इससे कुछ भी सम्बन्ध नही होना चाहिये कि कोई ''बड़ा आदमी'' उसके बारे में क्या सोचने लगेगा अथवा सम्यक्वाणी के व्यवहार से उसकी क्या हानि हो सकती है।

27. सम्यक्वाणी का माप–दण्ड न किसी ''ऊपर के आदमी'' की आज्ञा है, और न किसी व्यक्ति को हो सकनेवाला व्यक्तिगत लाभ।

28. सम्यक्–कर्मान्त योग्य व्यवहार की शिक्षा देता है। हमारा हर कार्य ऐसा हो जिसके करते समय हम दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का ख्याल रखें।

29. सम्यक्–कर्मान्त का माप–दण्ड क्या है? सम्यक् कर्मान्त का माप–दण्ड यही है कि हमारा कार्य जीवन के जो मुख्य नियम हैं उनसे अधिक से अधिक समन्वय रखता हो।

30. जब किसी आदमी के कार्य इन नियमों से समन्वय रखते हों, तो उन्हें हम सम्यक्–कर्म कह सकते हैं।

31. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमानी ही होती है। लेकिन जीविका कमाने के ढंगों में अन्तर हैं। कुछ बुरे हैं, कुछ भले हैं। बुरे ढंग वे हैं जिनसे किसी की हानि होती है अथवा किसी के प्रति अन्याय होता है। अच्छे ढंग वे हैं जिनसे आदमी बिना किसी को हानि पहुंचाये अथवा बिना किसी के साथ अन्याय किये अपनी जीविका कमा सकता है। यही सम्यक्–आजीविका है।

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

32. सम्यक् व्यायाम; अविद्या को नष्ट करने के प्रयास की प्रथम सीढ़ी है, इस दुःखद कारागार के द्वार तक पहुंचने का रास्ता ताकि उसे खोला जा सके।

33. सम्यक्–व्यायाम के चार उद्देश्य हैं।

34. एक है अष्टांगिक–मार्ग विरोधी चित्त–प्रवृत्तियों की उत्पत्ति को रोकना।

35. दूसरा है ऐसी चित्त–प्रवृत्तियों को दबाना जो उत्पन्न हो गई हों।

36. तीसरा है ऐसी चित्त–प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना जो अष्टांगिक मार्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति की सहायक हों।

37. चौथा है ऐसी उत्पन्न चित्त–प्रवृत्तियों में और भी अधिक वृद्धि करना तथा उनका विकास करना।

38. सम्यक् स्मृति का मतलब है हर बात पर ध्यान दे सकता। यह मन की सतत् जागरूकता है। मन में जो अकुशल विचार उठते हैं, उनकी चौकीदारी करना सम्यक्स्मृति का ही एक दूसरा नाम है।

39. ''हे परिब्राजको! जो आदमी सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक–व्यायाम और सम्यक् स्मृति को प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्ग में पांच बाधाएँ या बन्धन आते हैं।''

40. ये है लोभ, द्वेष, आलस्य, विचिकित्सा तथा अनिश्चय इन बांधाओं को जो वास्तव में कड़े बंधन ही हैं जीत लेना या तोड़ना आवश्यक है। इन बंधनों से मुक्त होने का उपाय समाधि है। लेकिन परिब्राजको! यह समझ लेना चाहिये कि समाधि और 'सम्यक् समाधि' एक ही बात नहीं। दोनों में बड़ा अन्तर है।

41. समाधि का मतलब है केवल चित्त की एकाग्रता। इसमें सन्देह नहीं कि इससे वैसे ध्यानों को प्राप्त किया जा सकता है कि जिनके रहते ये पांचों संयोजन या बन्ध स्थगित रहते है।

42. लेकिन ध्यान की ये अवस्थायें अस्थायी हैं। इसलिये संयोजन या बंधन भी अस्थायी तौर पर ही स्थगित रहते हैं। आवश्यकता है चित्त में स्थायी परिवर्तन लाने की। इस प्रकार का स्थायी–परिवर्तन सम्यक् समाधि के द्वारा ही लाया जा सकता है।

43. खाली समाधि एक नकारात्मक स्थिति है, क्योंकि यह इतना ही तो करती है कि संयोजनों को अस्थायी तौर पर स्थगित रखे। इसमें मन का स्थायी परिवर्तन निहित नहीं है। सम्यक् समाधि एक भावात्मक वस्तु है। यह मन को कुशल–कर्मों का एकाग्रता के साथ चिन्तन करने का अभ्यास डालती है, और इस प्रकार मन की संयोजनोत्पन्न अकुशल–कर्मों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति को ही समाप्त कर देती है।

44. सम्यक् समाधि मन को कुशल और हमेशा कुशल की कुशल (भलाई ही भलाई) सोचने की आदत डाल देती है। सम्यक् समाधि मन को वह अपेक्षित शक्ति देती है, जिससे आदमी कल्याणरत रह सके।

साभार – भगवान बुद्ध और उनका धर्म
पृष्ठ सं. 97 से 100
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।